प्रशंसा की विनम्र स्वीकृति सीखना

सरीखा द्वारा लिखित

मेरा नाम सरीखा है। मैं अमरीका के न्यूजर्सी शहर में अपनी माँ शकुन्तला व पिता एसा; अपनी बहन प्रेमा और अपने प्यारे-से कुत्ते, नेप्च्यून के साथ रहती हूँ। मेरी आयु पन्द्रह वर्ष है। मैं सिद्धयोग संगीत सेवाकर्ता हूँ और संगीत मुझे बहुत खुशी देता है।

एक दिन, जब मैं नौ साल की थी तब श्री मुक्तानन्द आश्रम में एक उत्साहपूर्ण सत्संग के बाद कई लोग श्रीनिलय में गुरुमाई जी के आस-पास स्वतः ही एकत्र हो गए। मैं गुरुमाई जी के समक्ष अपना संगीत प्रस्तुत करने की इच्छा से पियानो पर अभ्यास कर रही थी और फिर प्रस्तुत करने का अवसर पाकर मैं खुशी से भर गई।

जब मैं पियानो बजाने के लिए कुर्सी पर अपनी मुद्रा व्यवस्थित कर रही थी, तब गुरुमाई जी ने मुझसे पूछा, "इस संगीत-रचना का क्या नाम है?"

मैंने उत्तर दिया, "माउन्ट किलिमंजारो।" गुरुमाई जी ने हॉल में उपस्थित लोगों से पूछा कि क्या वे जानते हैं कि माउन्ट किलिमंजारो कहाँ स्थित है, और इस छोटी-सी चर्चा के बीच मैंने पाया कि अब मेरी अंगुलियाँ प्रारम्भिक सुर को नहीं ढूँढ़ पा रही हैं। मैं उलझन में पड़ गई; बड़े उत्साह के साथ अभ्यास की गई इस संगीत-रचना को मैं फिर से याद करने का प्रयास करने लगी, किन्तु मेरे हाथ पियानो के सुरों पर आगे-पीछे घूम रहे थे मानो वे भी उलझन में हों। भले ही मैं घबरा गई थी, परन्तु मेरे मन में एक हलचल-सी थी जिसने मुझे इस अवसर को छोड़ने नहीं दिया।

उसी क्षण मुझे एक संगीत-रचना याद आ गई और मैंने बताया कि अब मैं पहली धुन के स्थान पर यह रचना प्रस्तुत करूँगी। मैंने अपने पूर्ण हृदय से यह धुन बजाई। समापन करते हुए जब मैंने अपना हाथ पियानो से ऊपर उठाया, सभी प्रसन्नतापूर्वक मेरे लिए तालियाँ बजाने लगे। मैं अपने स्थान पर खड़ी हो गई, चेहरे पर एक बड़ी-सी मुस्कान लिए, मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ, प्रेम व प्रशंसा से भरे इस शानदार कार्यक्रम में सबके बीच मैं बहुत घबरा रही थी और संकोच कर रही थी।

उसी समय, गुरुमाई जी ने एक पेशेवर पियानोवादक, कृष्ण वर्नर से कहा : "आप सरीखा को यह दिखाएँ कि प्रशंसा को कैसे स्वीकार करना चाहिए।" कृष्ण जी उठे और आकर मेरे पास खड़े हो गए। उन्होंने दिखाया कि विनम्रता के साथ झुककर, कैसे प्रशंसा को स्वीकार करना चाहिए और मैंने उनका अनुकरण किया। एक बार फिर से तालियाँ गूँजने लगीं और इस बार मैंने विनम्रतापूर्वक झुककर प्रशंसा को स्वीकार किया।

तब से प्रशंसा मिलने पर मैंने कभी संकोच नहीं किया और हमेशा उसे स्वीकार करने के लिए अपने आपको समय दिया—तब भी, जब मुझे लगा हो कि मेरी प्रस्तुति अच्छी नहीं थी। देने और पाने की मधुरता के बारे में यह एक ऐसी सिखावनी है जो निरन्तर मेरे जीवन में बनी रहती है : कि दूसरों को कुछ देने का अभ्यास, अपने आपमें पवित्र है और इसके बदले में मुझे जो मिलता है, उसे मैं हमेशा पूरे हृदय से स्वीकार करती हूँ। धन्यवाद गुरुमाई जी, मुझे यह सिखाने के लिए; और एक खुले, ग्रहणशील हृदय की अमृतमयी परिपूर्णता का अनुभव करने में मेरी सहायता करने के लिए धन्यवाद।

मैं स्वयं को आपके चरणकमलों में समर्पित करती हूँ। सन्त-कवि ब्रह्मानन्द जी कहते हैं :

[वह गाती है :]

बलिहारी मैं बलिहारी मैं,
गुरु-चरणकमल पर वारी मैं
बलिहारी मैं बलिहारी मैं

© २०२० एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।